श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

कपिल गीता अध्याय(भा॰म॰3.22)

वर्णन करने सांख्य योग का, और देने को ज्ञान ।
गुरु रूप में कपिल मुनि थे, देवहूति शिष्य समान।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
तृतीयः स्कंधः
॥ अथ द्वाविं(म्)शोऽध्यायः॥

मैत्रेय उवाच

एवमाविष्कृताशेष-गुणकर्मोदयो मुनिम् ।
सव्रीड इव तं(म्) सम्रा-डुपारतमुवाच ह ॥ 1॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं-विदुरजी ! इस प्रकार जब कर्दमजीने मनुजीके सम्पूर्ण गुणों और कर्मोंकी श्रेष्ठता वर्णन किया, तो उन्होंने उन निवृत्तिपरायण मुनिसे कुछ सकुचाकर कहा ।

मनुरुवाच

ब्रह्मासृजत्स्वमुखतो, युष्मानात्मपरीप्सया ।
छन्दोमयस्तपोविद्या-योगयुक्तानलम्पटान् ॥ 2॥
तत्त्राणायासृजच्चास्मान्, दोः(स्)सहस्रात्सहस्रपात् ।

हृदयं(न्) तस्य हि ब्रह्म, क्षत्रमङ्गं(म्) प्रचक्षते ॥ 3॥

मनुजीने कहा- मुने! वेदमूर्ति भगवान् ब्रह्माने अपने वेदमय विग्रहकी रक्षाके लिये तप, विद्या और योगसे सम्पन्न तथा विषयोंमें अनासक्त आप ब्राह्मणोंको अपने मुखसे प्रकट किया है और फिर उन सहस्र चरणोंवाले विराट् पुरुषने आपलोगोंकी रक्षाके लिये ही अपनी सहस्रों भुजाओंसे हम क्षत्रियोंको उत्पन्न किया है। इस प्रकार ब्राह्मण उनके हृदय और क्षत्रिय शरीर कहलाते हैं ।

अतो ह्यन्योन्यमात्मानं(म्), ब्रह्म क्षत्रं(ञ्) च रक्षतः ।

रक्षति स्माव्ययो देवः(स्), स यः(स्) सदसदात्मकः ॥ 4॥

अतः एक ही शरीरसे सम्बद्ध होनेके कारण अपनी-अपनी और एक-दूसरेकी रक्षा करनेवाले उन ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी वास्तवमें श्रीहरि ही रक्षा करते हैं, जो समस्त कार्यकारणरूप होकर भी वास्तवमें निर्विकार हैं ।

तव सन्दर्शनादेवच्, छिन्ना मे सर्वसं(म्)शयाः ।

यत्स्वयं(म्) भगवान् प्रीत्या, धर्ममाह रिरक्षिषोः ॥ 5॥

आपके दर्शनमात्रसे ही मेरे सारे सन्देह दूर हो गये, क्योंकि आपने मेरी प्रशंसाके मिससे स्वंय ही प्रजापालनकी इच्छावाले राजाके धर्मोका बड़े प्रेमसे निरूपण किया है ।

दिष्ट्या मे भगवान् दृष्टो, दुर्दर्शो योऽकृतात्मनाम् ।

दिष्ट्या पादरजः(स्) स्पृष्टं(म्), शीर्ष्णा मे भवतः(श्) शिवम् ॥ 6॥

आपका दर्शन अजितेन्द्रिय पुरुषोंको बहुत दुर्लभ है: मेरा बड़ा भाग्य है, जो मुझे आपका दर्शन हुआ और मैं आपके चरणोंकी मङ्गलमयी रज अपने सिरपर चढ़ा सका ।

दिष्ट्या त्वयानुशिष्टोऽहं(ङ्), कृतश्चानुग्रहो महान् ।

अपावृतैः(ख्) कर्णरन्ध्रैर्- जुष्टा दिष्ट्योशतीर्गिरः ॥ 7॥

मेरे भाग्योदयसे ही आपने मुझे राजधर्मोकी शिक्षा देकर मुझपर महान् अनुग्रह किया है और मैंने भी शुभ प्रारब्धका उदय होनेसे ही आपकी पवित्र वाणी कान खोलकर सुनी है ।

स भवान् दुहितृस्नेह-परिक्लिष्टात्मनो मम ।

श्रोतुमर्हसि दीनस्य, श्रावितं(ङ्) कृपया मुने ॥ 8॥

मुने! इस कन्याके स्नेहवश मेरा चित्त बहुत चिन्ताग्रस्त हो रहा है; अतः मुझ दीनकी यह प्रार्थना आप कृपापूर्वक सुनें ।

प्रियव्रतोत्तानपदोः(स्), स्वसेयं(न्) दुहिता मम ।

अन्विच्छति पतिं(यँ) युक्तं(वँ), वयः(श्)शीलगुणादिभिः ॥ 9॥

यह मेरी कन्या--जो प्रियव्रत और उत्तानपादकी बहिन है अवस्था, शील और गुण आदिमें अपने योग्य पतिको पानेकी इच्छा रखती है ।

यदा तु भवतः(श्) शील*-श्रुतरूपवयोगुणान् ।

अशृणोन्नारदादेषा, त्वय्यासीत्कृतनि*श्चया ॥ 10॥

जबसे इसने नारदजीके मुखसे आपके शील, विद्या, रूप, आयु और गुणोंका वर्णन सुना है, तभीसे यह आपको अपना पति बनानेका निश्चय कर चुकी है ।

तत्प्रतीच्छ* द्विजाग्र्येमां(म्), श्र*द्धयोपहृतां(म्) मया ।

सर्वात्मनानुरूपां(न्) ते, गृहमेधिषु कर्मसु ॥ 11॥

द्विजवर! मैं बड़ी श्रद्धासे आपको यह कन्या समर्पित करता हूँ, आप इसे स्वीकार कीजिये। यह गृहस्थोचित कार्योंके लिये सब प्रकार आपके योग्य है ।

उ*द्यत*स्य हि काम*स्य*, प्रतिवादो न श*स्यते ।

अपि निर्मु*क्तस*ङ्ग*स्य, काम*र*क्त*स्य किं(म्) पुनः ॥ 12॥

जो भोग स्वतः प्राप्त हो जाय, उसकी अवहेलना करना विरक्त पुरुषको भी उचित नहीं है; फिर विषयासक्तकी तो बात ही क्या है ।

य उ*द्यतमनाद*त्य, कीनाशमभियाचते ।

क्षीयते त*द्यशः(स्) स्फीतं(म्), मान*श्चावज्ञया हतः ॥ 13॥

जो पुरुष स्वयं प्राप्त हुए भोगका निरादर कर फिर किसी कृपणके आगे हाथ पसारता है, उसका बहुत फैला हुआ यश भी नष्ट हो जाता है और दूसरों के तिरस्कारसे मानभङ्ग भी होता है ।

अहं(न्) त्वाशृणवं(वँ) वि*द्वन्, विवाहार्थं(म्) सम्*द्यतम् ।

अतस्त्वमुपकुर्वाणः(फ्), प्रत्तां(म्) प्रतिगृहाण मे ॥ 14॥

विद्वन् ! मैंने सुना है, आप विवाह करनेके लिये उद्यत हैं। आपका ब्रहचर्य एक सीमातक है, आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी तो हैं नहीं। इसलिये अब आप इस कन्याको स्वीकार कीजिये, मैं इसे आपको अर्पित करता हूँ ।

ऋषिरुवाच

बाढम्*द्वोढुकामोऽह-म्*प्रत्ता च तवात्मजा ।

आवयोरनुरूपोऽसा-वाद्यो वैवाहिको विधिः ॥ 15॥

श्रीकर्दम मुनिने कहा- ठीक है, मैं विवाह करना चाहता हूँ और आपकी कन्याका अभी किसीके साथ वाग्दान नहीं हुआ है, इसलिये हम दोनोंका सर्वश्रेष्ठ ब्राह्म विधिसे विवाह होना उचित ही होगा ।

कामः(स्) स भूयान्नरदेव तेऽस्याः(फ्),

पुत्र्याः(स्) समाम्नायविधौ प्रतीतः ।

क एव ते तनयां(न्) नाद्रियेत,

स्वयैव कान्त्या क्षिपतीमिव श्रियम् ॥ 16॥

राजन्! वेदोक्त विवाह-विधिमें प्रसिद्ध जो'गृभ्णामि ते' इत्यादि मन्त्रोंमें बताया हुआ काम (संतानोत्पादनरूप मनोरथ) है, वह आपकी इस कन्याके साथ हमारा सम्बन्ध होनेसे सफल होगा। भला, जो अपनी अङ्गकान्तिसे आभूषणादिकी शोभाको भी तिरस्कृत कर रही है,आपकी उस कन्याका कौन आदर न करेगा ?

यां(म्) हर्म्यपृष्ठे क्वणदङ्घ्रिशोभां(वँ),

विक्रीडतीं(ङ्) कन्दुकविह्वलाक्षीम् ।

विश्वावसुर्न्यपतत्स्वाद्विमाना-

द्विलोक्य सम्मोहविमूढचेताः ॥ 17॥

एक बार यह अपने महलकी छतपर गेंद खेल रही थी। गेंदके पीछे इधर-उधर दौड़नेके कारण इसके नेत्र चञ्चल हो रहे थे तथा पैरोंके पायजेब मधुर झनकार करते जाते थे। उस समय इसे देखकर विश्वावसु गन्धर्व मोहवश अचेत होकर अपने विमानसे गिर पड़ा था ।

तां(म्) प्रार्थयन्तीं(लँ) ललनाललाम-

मसेवितश्रीचरणैरदृष्टाम् ।

वत्सां(म्) मनोरुच्चपदः(स्) स्वसारं(ङ्)

को नानुमन्येत बुधोऽभियाताम् ॥ 18॥

वही इस समय यहाँ स्वयं आकर प्रार्थना कर रही है; ऐसी अवस्थामें कौन समझदार पुरुष इसे स्वीकार न करेगा? यह तो साक्षात् आप महाराज श्रीस्वायम्भुवमनुकी दुलारी कन्या और उत्तानपादकी प्यारी बहिन है तथा यह रमणियोंमें रत्न के समान है। जिन लोगोंने कभी श्रीलक्ष्मीजीके चरणोंकी उपासना नहीं की है, उन्हें तो इसका दर्शन भी नहीं हो सकता ।

अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं(यँ),

यावत्तेजो बिभृयादात्मनो मे ।

अतो धर्मान् पारमहं(म्)स्यमुख्यान्,

शुक्लप्रोक्तान् बहु मन्येऽविहिं(म्)सान् ॥ 19॥

अतः मैं आपकी इस साध्वी कन्याको अवश्य स्वीकार करूँगा, किन्तु एक शर्तके साथ। जबतक इसके संतान न हो जायगी, तबतक मैं गृहस्थ धर्मानुसार इसके साथ रहूंगा उसके बाद भगवान्के बताये हुए संन्यासप्रधान हिंसारहित शम-दमादि धर्मो को ही अधिक महत्त्व दूंगा ।

यतोऽभवद्विश्वमिदं(वँ) विचित्रं(म्)

सं(म्)स्थास्यते यत्र च वावतिष्ठते ।

प्रजापतीनां(म्) पतिरेष मह्यं(म्)

परं(म्) प्रमाणं(म्) भगवाननन्तः ॥ 20॥

जिनसे इस विचित्र जगत्को उत्पत्ति हुई है. जिनमें यह लीन हो जाता है और जिनके आश्रयसे यह स्थित है मुझे तो वे प्रजापतियोंके भी पति भगवान् श्री अनन्त ही सबसे अधिक मान्य हैं ।

मैत्रेय उवाच

स उग्रधन्वन्नियदेवाबभाषे

आसीच्च तूष्णीमरविन्दनाभम् ।

धियोपगृह्णन् स्मितशोभितेन

मुखेन चेतो लुलुभे देवहूत्याः ॥ 21॥

मैत्रेयजी कहते हैं-प्रचण्ड धनुर्धर विदुर! कर्दमजी केवल इतना ही कह सके, फिर वे हृदयमें भगवान् कमलनाभका ध्यान करते हुए मौन हो गये। उस समय उनके मन्द हास्ययुक्त मुखकमलको देखकर देवहूतिका चित्त लुभा गया ।

सोऽनुज्ञात्वा व्यवसितं(म्), महिष्या दुहितुः(स्) स्फुटम् ।

तस्मै गुणगणाढ्याय, ददौ तुल्यां(म्) प्रहर्षितः ॥ 22॥

मनुजीने देखा कि इस सम्बन्धमें महारानी शतरूपा और राजकुमारीकी स्पष्ट अनुमति है, अतः उन्होंने अनेक गुणोंसे सम्पन्न कर्दमजीको उन्हींके समान गुणवती कन्याका प्रसन्नतापूर्वक दान कर दिया ।

शतरूपा महाराज्ञी, पारिबर्हान् महाधनान् ।

दम्पत्योः(फ्) पर्यदात्प्रीत्या, भूषावासः(फ्) परिच्छदान् ॥ 23॥

महारानी शतरूपाने भी बेटी और दामादको बड़े प्रेमपूर्वक बहुत से बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण और गृहस्थोचित पात्रादि दहेज में दिये ।

प्रत्तां(न्) दुहितरं(म्) सम्राट्, सदृक्षाय गतव्यथः ।

उपगुह्य च बाहुभ्या-मौत्कण्ठ्योन्मथिताशयः ॥ 24॥

अशक्नुवं(म्)स्तद्विरहं(म्), मुञ्चन् बाष्पकलां(म्) मुहुः ।

आसिञ्चदम्ब वत्सेति, नेत्रोदैर्दुहितुः(श्) शिखाः ॥ 25॥

इस प्रकार सुयोग्य वरको अपनी कन्या देकर महाराज मनु निश्चिन्त हो गये। चलती बार उसका वियोग न सह सकनेके कारण उन्होंने उत्कंठा वश विह्वलचित्त होकर उसे अपनी छाती से चिपटा लिया और 'बेटी बेटी' कहकर रोने लगे। उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी और उनसे उन्होंने देवहूतिके सिरके सारे बाल भिगो दिये। ।

आमन्त्र्य तं(म्) मुनिवर-मनुज्ञातः(स्) सहानुगः ।

प्रतस्थे रथमारुह्य, सभार्यः(स्) स्वपुरं(न्) नृपः ॥ 26॥

उभयोः ऋषिकुल्यायाः(स्), सरस्वत्याः(स्) सुरोधसोः ।

ऋषीणामुपशान्तानां(म्), पश्यन्नाश्रमसम्पदः ॥ 27॥

फिर वे मुनिवर कर्दमसे पूछकर उनकी आज्ञा ले रानीके सहित रथपर सवार हुए और अपने सेवकोंसहित ऋषिकुलसेवित सरस्वती नदीके दोनों तीरोंपर मुनियोंक आश्रमों की शोभा देखते हुए अपनी राजधानीमें चले आये ।

तमायान्तमभिप्रेत्य, ब्रह्मावर्तात्प्रजाः(फ्) पतिम् ।

गीतसं(म्)स्तुतिवादित्रैः(फ्), प्रत्युदीयुः(फ्) प्रहर्षिताः ॥ 28॥

जब ब्रह्मावर्तकी प्रजाको यह समाचार मिला कि उसके स्वामी आ रहे हैं तब वह अत्यन्त आनन्दित होकर स्तुति, गीत एवं बाजे-गाजेके साथ अगवानी करनेके लिये ब्रह्मावर्तकी राजधानीसे बाहर आयी।

बर्हिष्मती नाम पुरी, सर्वसम्पत्समन्विता ।

न्यपतन् यत्र रोमाणि, यज्ञस्याङ्गं(वँ) विधुन्वतः ॥ 29॥

सब प्रकारकी सम्पदाओंसे युक्त बर्हिष्मती नगरी मनुजीको राजधानी थी, जहाँ पृथ्वीको रसातलसे ले आनेके पश्चात् शरीर कंपाते समय श्री वराह भगवान के रोम झड़कर गिरे थे ।

कुशाः(ख्) काशास्त एवासन्, शश्वद्धरितवर्चसः ।

ऋषयो यैः(फ्) पराभाव्य, यज्ञघ्नान्यज्ञमीजिरे ॥ 30॥

वे रोम ही निरन्तर हरे-भरे रहनेवाले कुश और कास हुए, जिनके द्वारा मुनियोंने यज्ञमें विघ्न डालनेवाले दैत्योंका तिरस्कार कर भगवान् यज्ञपुरुषकी यज्ञोंद्वारा आराधना की है ।

कुशकाशमयं(म्) बर्हि-रास्तीर्य भगवान् मनुः ।

अयजद्यज्ञपुरुषं(लँ), लब्धा स्थानं(यँ) यतो भुवम् ॥ 31॥

महाराज मनुने भी श्रीवराह भगवान् से भूमिरूप निवासस्थान प्राप्त होनेपर इसी स्थानमें कुश और कासकी बर्हि (चटाई बिछाकर श्रीयज्ञभगवान् की पूजा की थी ।

बर्हिष्मतीं(न्) नाम विभुर्-यां(न्) निर्विश्य समावसत् ।

तस्यां(म्) प्रविष्टो भवनं(न्), तापत्रयविनाशनम् ॥ 32॥

जिस बर्हिष्मती पुरीमें मनुजी निवास करते थे, उसमें पहुँचकर उन्होंने अपने त्रितापनाशक भवनमें प्रवेश किया ।

सभार्यः(स्) सप्रजः(ख्) कामान्, बुभुजेऽन्याविरोधतः ।

सङ्गीयमानसत्कीर्तिः(स्), सस्त्रीभिः(स्) सुरगायकैः ।

प्रत्यूषेष्वनुबद्धेन, हृदा शृण्वन् हरेः(ख्) कथाः ॥ 33॥

वहाँ अपनी भार्या और सन्ततिके सहित वे धर्म, अर्थ और मोक्षके अनुकूल भोगोको भोगने लगे। प्रातःकाल होनेपर गन्धर्वगण अपनी स्त्रियोंके सहित उनका गुणगान करते थे, किन्तु मनुजी उसमें आसक्त न होकर प्रेमपूर्ण हृदयसे श्रीहरिकी कथाएँ ही सुना करते थे ।

निष्णातं(यँ) योगमायासु, मुनिं(म्) स्वायम्भुवं(म्) मनुम् ।

यदा भ्रं(म्)शयितुं(म्) भोगा, न शेकुर्भगवत्परम् ॥ 34॥

वे इच्छानुसार भोगोका निर्माण करनेमें कुशल थे; किन्तु मननशील और भगवत्परायण होनेके कारण भोग उन्हें किंचित् भी विचलित नहीं कर पाते थे ।

अयातयामास्तस्यासन्, यामाः(स्) स्वान्तरयापनाः ।

शृण्वतो ध्यायतो विष्णोः(ख्), कुर्वतो ब्रुवतः(ख्) कथाः ॥ 35॥

स एवं(म्) स्वान्तरं(न्) निन्ये, युगानामेकसप्ततिम् ।

वासुदेवप्रसङ्गेन, परिभूतगतित्रयः ॥ 36॥

भगवान् विष्णुकी कथाओंका श्रवण, ध्यान, रचना और निरूपण करते रहने के कारण उनके मन्वन्तरको व्यतीत करनेवाले क्षण कभी व्यर्थ नहीं जाते इस प्रकार अपनी जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओं अथवा तीनों गुणोको अभिभूत करके उन्होंने भगवान् वासुदेवके कथाप्रसङ्गमे अपने मन्वन्तरके इकहत्तर चतुर्युग पूरे कर दिये ।

शारीरा मानसा दिव्या, वैयासे ये च मानुषाः ।

भौतिकाश्च कथं(ङ्) क्लेशा, बाधन्ते हरिसं(म्)श्रयम् ॥ 37॥

व्यासनन्दन विदुरजी ! जो पुरुष श्रीहरिके आश्रित रहता है, उसे शारीरिक, मानसिक, दैविक, मानुषिक अथवा भौतिक दुःख किस प्रकार कष्ट पहुँचा सकते हैं ।

यः(फ्) पृष्टो मुनिभिः(फ्) प्राह, धर्मान्नानाविधान् शुभान् ।

नृणां(वँ) वर्णाश्रमाणां(ञ्) च, सर्वभूतहितः(स्) सदा ॥ 38॥

मनुजी निरन्तर समस्त प्राणियोंके हितमें लगे रहते थे। मुनियोंके पूछनेपर उन्होंने मनुष्योंके तथा समस्त वर्ण और आश्रमोंके अनेक प्रकारके मङ्गलमय धर्मोंका भी वर्णन किया (जो मनुसंहिताके रूपमें अब भी उपलब्ध है)।

एतत्त आदिराजस्य, मनोश्चरितमद्भुतम् ।

वर्णितं(वँ) वर्णनीयस्य, तदपत्योदयं(म्) शृणु ॥ 39॥

जगत्के सर्वप्रथम सम्राट् महाराज मनु वास्तवमें कीर्तनके योग्य थे। यह मैंने उनके अद्भुत चरित्रका वर्णन किया, अब उनकी कन्या देवहूतिका प्रभाव सुनो ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्)

सं(म्)हितायां(न्) तृतीयस्कन्धे द्वाविं(म्)शोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥